मीडियाकृत भारतः जनता, नीति और मीडिया दृश्यता की नीति
Mediatized India: Publics, Policy and Politics of Media Visibility

सहाना उडुपा
Sahana Udupa
May 10, 2010

नब्बे के दशक के मध्य में आई सैटेलाइट टेलीविज़न ''क्रांति'' ने भारत के मीडिया भूदृश्य का नाटकीय रूप में कायाकल्प कर दिया. बहुराष्ट्रीय मीडिया कंपनियों के प्रवेश के कारण और देसी स्वामित्व वाले भिन्न-भिन्न ढाँचों के साथ अंग्रेज़ी और क्षेत्रीय भाषाओं के अनेक टेलीविज़न चैनलों के एक साथ आ जाने के कारण एक नया ''दृश्यात्मक दौर'' शुरू हो गया. भारतीय पाठकों के सर्वेक्षणों से पता चलता है कि दैनिक समाचार पत्रों और अन्य मीडिया के पाठकों की तादाद में निरंतर वृद्धि हुई है. उद्योग के पूर्वानुमान मीडिया सेक्टर की एक ऐसी जबर्दस्त छवि पेश करते हैं जिसमें मीडिया सेक्टर का विस्फोट दिखाई पड़ता है और इन पूर्वानुमानों में टेलीविज़न की प्रमुख भूमिका दिखाई पड़ती है. न केवल टेलीविज़न भारत में समग्र मीडिया राजस्व का लगभग आधा भाग जुटाता है, बल्कि यह अनुमान लगाया गया है कि 11.4 प्रतिशत की स्थिर गति से इसकी वृद्धि की भी संभावना है. भारतीय मीडिया और मनोरंजन क्षेत्र पर प्राइस वाटर हाउस कूपर्स की रिपोर्ट के अनुसार 2012 तक टेलीविज़न उद्योग का आकार $15 बिलियन तक पहुँच सकता है. समग्र रूप में मीडिया उद्योग तेज़ी से बढ़ती दर से आगे बढ़ता रहेगा और 2009-13 की अवधि में 10.5 प्रतिशत की समग्र मिश्रित वार्षिक दर पर पहुँच जाएगा. चैनल बहुत तेज़ी से बढ़ते जा रहे हैं और नए-नए ढंग के मीडिया रूपों का भी धीरे-धीरे विस्तार हो रहा है,जैसे वीडियो-ऑन-डिमांड, वीडियो गेम, डिजिटल मीडिया और सामाजिक मीडिया आदि.

हम दृश्यात्मक साक्षरता,मीडियाकृत दृश्यता और सूचना के इस विशाल और फलते-फूलते स्वरूप को कैसे समझ सकते हैं? विभिन्न प्रकार के मीडिया परिदृश्यों के लिए क्या नीतिगत उपाय किए गए हैं? विशिष्ट राजनीतिक अर्थव्यवस्था के अंतर्गत स्वामित्व के ढाँचे की जाँच की जाएगी और भारत में आ रही विदेशी पूँजी की बढ़ती मात्रा के बारे में हमें सचेत किया जाएगा और स्वामित्व के केंद्रीकरण या फिर उससे भी अधिक भयानक मीडिया निर्माण पर एकाधिकार के बारे में चिंता प्रकट की जाएगी. इसके भयावह परिणाम होंगे, क्योंकि विषयवस्तु एक जैसी ही होगी और उस पर पश्चिम (विशेषकर अमरीका) का एकमात्र एकाधिकार रहेगा और *फ्रैंड्स, मैक्डॉनल्ड* और *फ़ॉक्स न्यूज़* के रूप में पूरे भारत में यह विषयवस्तु व्याप्त होगी.

इसमें संदेह नहीं है कि समकालीन मीडिया प्रोडक्शन में, खास तौर पर रिएलिटी टेलीविज़न में, पुनर्निर्माण की बहुत गुंजाइश है. इसमें बाहर से आयातित शो को डुप्लीकेट टेलीविज़न शो के रूप में पुनर्निर्मित किया जा सकता है. जैसे बिग बॉस (बिग ब्रदर की तरह), इंडियन आइडल (अमेरिकन आइडल की तरह), सच का सामना (द मूमेंट ऑफ़ ट्रुथ की तरह). इसलिए यह पूरी तरह समान न होकर विषम भी है. इस बात के काफ़ी प्रमाण हैं कि बहुराष्ट्रीय कंपनियों को अपनी विषयवस्तु और फ़ॉर्म का ''भारतीयकरण'' करना ही होगा. तभी वे व्यावसायिक दृष्टि से अर्थक्षम हो पाएँगी. मीडिया

की इसी स्ट्रेटेजी के कारण ही संबंधित क्षेत्र के अनुसार विषयवस्तु और फ़ॉर्म का बारबार स्थानीकरण और ट्रेडमार्क किया जाता है. स्थानीय मीडिया (बनाम अमेरिकन ऐंग्लो मीडिया) वैश्विकता से प्रभावित है और नए-नए अर्थ ग्रहण करता है और इससे अमेरिकन मॉडल और स्वयं उसमें भी परिवर्तन होने लगता है.

इसी समय भारत में मीडिया के श्रोताओं और मीडिया प्रोडक्शन में तेज़ी से वृद्धि के कारण मीडिया का कुछ हद तक ''जनताकरण'' भी हो रहा है. टेलीविज़न और नए समाचार मीडिया आउटलेट ने (छोटे आकार वाले समाचार पत्र, केबल टेलीविज़न,पायरेटेड वीडियो और नया मीडिया सहित) सार्वजनिक क्षेत्र को और अधिक विस्तृत कर दिया है और इसमें पिछले दौर से भी अधिक लोगों और वर्गों का समावेश हो गया है. इस दृष्टि से उपनिवेशवादी और स्वातंत्र्योत्तर युग में मीडिया प्रोडक्शन में मीडिया का जो उच्च वर्ग का मॉडल था उससे वह साफ़ तौर पर बाहर निकल आया है; इसका एक कारण व्यापक पायरेसी की संस्कृति भी रही है, जिसमें हज़ारों नकली मीडिया प्रोडक्ट बाज़ार में चोरी-छिपे पहुँच जाते हैं.

यह ''जनताकरण'' या मीडिया का बढ़ता सार्वजनिक दायरा फ्रैंकफ़र्ट स्कूल की उस मान्यता से बिल्कुल भिन्न है जिसका उल्लेख वे संस्कृति उद्योग नाम से करते हुए मखौल उड़ाया करते थे. यह कहना अतिशयोक्ति होगी कि मीडिया छवियों की बाढ़ से भारतीय दर्शक निष्क्रिय, उपभोक्तावादी, एक समान, आलोचनाविहीन और पूरी तरह से जनतावाद से ग्रस्त हो गया है अर्थात् संस्कृति उद्योग के चलते *प्रेक्षक* मात्र *जन* बनकर रह गया है.

इस दावे के समर्थन के लिए कम से कम दो विचार तो हैं ही. पहला विचार तो यह है कि भारतीय मीडिया में भाँति-भाँति के श्रोता और सांस्कृतिक दल हैं. मीडिया के अनेक रूप और उनके निर्धारित श्रोता-समूह मीडिया प्रोडक्शन के नेटवर्क के भीतर आपस में टकराते हैं, एक दूसरे को अतिच्छादित करते हैं और अपनी अलग पहचान बनाते हैं. इसलिए सांस्कृतिक प्रोडक्ट और उनके श्रोता बिखरे हुए हैं, टूटे हुए हैं और अनिवार्यतः गड्ड मड्ड हैं. यदि विधान सौध के चारों ओर बँटने वाले फ़्लाई-बाई-नाइट अखबार पुलिस अफ़सरों को ब्लैकमेल करते हैं और गपशप के भूखे सरकारी कर्मचारियों को गुदगुदाते हैं तो हज़ारों केबल टेलीविज़न नेटवर्क सत्ता केंद्र से दूर रहकर पड़ोसी टेलीविज़न सेटों पर बॉलीवुड के (पायरेट किए हुए) सिनेमा को दर्शाते हैं. साथ ही एक शक्तिशाली राष्ट्रीय टेलीविज़न नेटवर्क भी है और उससे भी अधिक शक्तिशाली क्षेत्रीय भाषा के टेलीविज़न चैनल भी हैं, जिनमें परंपरा और अंधविश्वास की प्रतिगामी आलंकारिक भाषा के मिश्रण के साथ अपराध, राजनीति और मैलोड्रामा की उत्तेजक कॉकटेल होती है.

दूसरा विचार यह है कि टेलीविज़न के दर्शक निश्चय ही मात्र मूक दर्शक हैं और वे किसी बात की भी आलोचना नहीं करते. यह सिद्ध करना बहुत मुश्किल है,लेकिन स्टूडियो में बैठकर ''दैनंदिन विषयों'' (जैसे आरुषि या जेसिका लाल हत्याकांड पर की गई बहस) पर जो वाद-विवाद होता है उसकी संख्या बढ़ती जा रही है और उससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि एक सक्रिय मध्यमवर्गीय नागरिक भी है जो अपनी चिंताओं को प्रकट करने और न्याय पाने के लिए प्रयत्नशील है. इससे यह संकेत मिलता है

कि टेलीविज़न चैनलों की ज़मीन से राजनीतिक संस्कृति के नए स्वरूप का उदय हो रहा है. इसने दर्शकों को ऐसे नागरिकों में तबदील कर दिया है जो अधिक मुखर होकर कठोरता से आलोचना करते हैं और महत्वपूर्ण नागरिक के रूप में स्टूडियो में आयोजित वाद-विवाद में भाग लेते हैं और राजनीतिज्ञों को चुनौती देते हैं. ये लोग अपनी सड़कों और वृक्षों के संरक्षण के लिए विरोधस्वरूप धरना देते हैं और अपनी रैली को कवर करने के लिए मीडिया को आमंत्रित करते हैं. ये लोग पुलिस में शिकायत दर्ज करने की सोचने से पहले ही टेलीविज़न के रिपोर्टर से संपर्क करते है. ये लोग इंटरनेट पर विश्वव्यापी (जैसे गुलाबी चड्ढी का अभियान) समर्थन जुटाने के लिए अभियान चलाते हैं. गहन अर्थ में शासन में *दृश्यता* ने अपनी जगह बना ली है और शासक दल आंशिक रूप में (और कभी-कभी गलत रूप में भी) मीडिया और मीडियाकृत सार्वजनिकता के प्रति उत्तरदायी भी होने लगा है. इस नए किस्म की मीडियाकृत राजनैतिक सक्रियता का उल्लेखनीय उदाहरण *लोकायुक्त* का उदय है. लोकायुक्त दक्षिण भारत के कर्नाटक राज्य में भ्रष्टाचार के खिलाफ़ नागरिकों के अधिकारों का प्रहरी है. इसके दोषी वे सरकारी पदाधिकारी होते हैं जो आम नागरिकों से घूस लेते हुए *लोकायुक्त* के सतर्कता दल के फैलाए जाल में फँस जाते हैं. ये जाल कभी-कभी पूरे कानूनी जाल भी बन जाते हैं, जिनमें फँसकर पदाधिकारी अपने अपराध के लिए दोषी भी सिद्ध हो जाते है और कानूनी तौर पर दंडित भी किए जाते हैं. *दृश्यता का यह जाल* ऐसा है जिसमें मीडिया के डाले हुए चारे में फँसकर दोषी पदाधिकारी तड़पते हैं और असंख्य दर्शक उन्हें देख रहे होते हैं. दृश्यता का यह जाल न तो फ्रैंकफ़र्ट स्कूल का अभिभूत कर देने वाला दर्शक है और न ही कांट का निस्संग सौंदर्यप्रेमी है. इसमें दृश्यता अपने आप में ही राजनैतिक आचरण है. इसका अच्छा पक्ष यह है कि यह अपराधी को ''बेनकाब'' कर देता है और सरकार को लोकतांत्रिक रूप में दखल देने के लिए आवश्यक प्रमाण जुटा देता है, जिसकी सचमुच लंबे समय से ज़रूरत थी. इसकी बुराई यह है कि शासक दल इसमें अपनी मुक्ति का मार्ग खोज लेता है और जनता को उसका अधिकार देने के बजाय उसे अभिव्यक्ति का अवसर प्रदान करता है. वाल्टर बेंजामिन ने इसे ही ''सौंदर्यीकृत राजनीति'' कहा था.

यही समकालीन मीडिया प्रोडक्शन की अस्पष्टता है और भारत में मीडिया दृश्यता के गहन स्पेस का विस्फोट है. समकालीन राजनीति और व्यावसायिक प्रेरणा के बीच अंतर करना बहुत ज़रूरी है,क्योंकि इसके वांछित और अवांछित दोनों ही प्रकार के परिणाम हो सकते हैं. परंतु नीतिगत प्रतिमान बहुरंगी मीडिया क्षेत्र के सूक्ष्मार्थों की प्रशस्ति के कुछ नज़दीक ही हैं. इसके बजाय भारत सरकार दो अतिवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए मँझधार में फँसी हुई हैः नीतिनिर्माण के उपनिवेशीय प्रतिमान को अपनाते हुए मीडिया की कई तरह से भर्त्सना की जाती है और प्रसारण मीडिया जैसे मामले में विनियामक ढाँचे को लागू करने में टाल-मटोल की जाती है, जिससे कॉर्पोरेट सेक्टर के साथ मिलीभगत का संदेह होता है.

इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि नीति संबंधी प्रतिमान ऊपर से नीचे और केंद्रीकृत विनियामक तंत्र में फँसकर रह गए हैं. जहाँ एक ओर यह बहुत आवश्यक है कि मीडिया के एकाधिकार के खिलाफ़ कड़ी नज़र रखी जाए , वहीं दूसरी ओर मीडिया पर नीति और नागरिक समाज के बारे में होने वाली परिचर्चाएँ भी मीडिया विस्तार के सामाजिक और सांस्कृतिक निहितार्थों के प्रति समान रूप से संवेदनशील होनी चाहिए. उच्चतम न्यायालय के 1965 के ऐतिहासिक निर्णय ने कुछ

नए नीतिगत प्रतिमान तय किए हैं, जिनके अनुसार वायुतरंगें (एयरवेव्ज़) ''सार्वजनिक संपत्ति'' हैं. इसलिए प्रेस की आज़ादी को केवल मीडिया उद्यमों द्वारा कारोबार करने की आज़ादी के रूप में ही नहीं देखा जाना चाहिए, बल्कि जनता के स्थायी अधिकार के रूप में देखा जाना चाहिए ताकि वे इनके ज़रिए अभिव्यक्ति का माध्यम प्राप्त कर सकें और सार्वजनिक विषयों पर वादविवाद कर सकें. अभिव्यक्ति के अधिकार को व्यापक रूप में देखा जाना चाहिए. इस अधिकार में सुने जाने और बोलने का अधिकार भी शामिल है. इस महत्वपूर्ण निर्णय ने विनियामक संबंधी बहस को विनियामक राज्य और स्वतंत्र मीडिया के विभाजन की बहस से कहीं आगे धकेल दिया है और मीडिया प्रोडक्शन की विविधता को बचाने पर बल देने को क्हा है.

इस निर्णय के आलोक में यह ज़रूरी है कि एक संस्थागत क्षमता का निर्माण किया जाए, जो मीडिया की आलोचना में सक्षम हो और मीडिया साक्षरता के विकासपरक दायरे को बिना छेड़े ही समाज के कमज़ोर वर्ग को भी मीडिया में अधिकाधिक स्थान दिला सके. नीति में इस बात पर बल दिया जाना चाहिए कि अभिव्यक्ति के केंद्रीकृत नियामक को परंपरागत क्षेत्र से बाहर लाकर अभिव्यक्ति के विकेंद्रीकृत क्षेत्र में लाया जाए. केंद्र और राज्य सरकारों को चाहिए कि वे उन तमाम संस्थाओं को फिर से प्राणवान् बनाएँ जिनका गठन उत्तरदायी मीडिया प्रोडक्शन और अच्छे मीडिया की सार्वजनिक मान्यता के लिए किया गया था और फिर इन संस्थाओं को विकेंद्रीकृत करके उसमें जनता की भागीदारी सुनिश्चित की जाए. इसके उल्लेखनीय उदाहरण सरकार द्वारा प्रवर्तित मीडिया अकादमी जैसे व्यावसायिक संगठन हो सकते हैं. इस समय कुछ अपवादों को छोड़कर ये संस्थाएँ सरकारी प्रकाशनों के ठंडे गोदाम बने हुए हैं, जो उन पत्रकारों को पुरस्कार देने के लिए साल में एक बार हरकत में आते हैं, जो या तो शासक दल के चहेते होते हैं या फिर जबर्दस्त लॉबी करके पुरस्कार पाने में कामयाब होते हैं. इन अकादमियों और इसी प्रकार की अन्य संस्थाओं को मज़बूत बनाया जाना चाहिए ताकि वे जनता और पत्रकारों के बीच मीडिया प्रोडक्शन पर सार्थक बहस करा सकें और साथ ही मुख्य धारा के मीडिया पर गरीब और कमज़ोर वर्ग की कहानियाँ जुटा सकें.

मीडिया शिक्षण दूसरा क्षेत्र है जहाँ महत्वपूर्ण पुनर्निर्देशन देने की आवश्यकता है. निजी मीडिया शिक्षण एक तेज़ी से फलता-फूलता क्षेत्र है जिसमें शिक्षण के अलग-अलग मानदंड हैं. परंतु एक बात सभी संस्थाओं में समान है और वह यह है कि इनमें संकीर्ण रोज़गारपरक प्रशिक्षण दिया जाता है और इनमें समाज, राजनीति और संस्कृति की समग्र दृष्टि का अभाव है. इन उपायों से मीडिया की ज़्यादतियों पर नकेल कसने के लिए अतिरिक्त विनियामक प्रयास किए जाने चाहिए पिछले दशक में भारत सरकार ने प्रसारण बिल और कॉन्टेंट कोड के अनेक अवतारों को उल्टे सीधे ढंग से लागू किया. इस पर विशेष रूप से व्यावसायिक मीडिया संघ और समाचार प्रसारक संघ ने जल्दी से सरकार के संभावित हस्तक्षेप से बचने के लिए आचार संहिता तैयार कर ली.

यद्यपि यह प्रयास निश्चय ही प्रशंसनीय है,लेकिन मीडिया क्षेत्र के भीतर रोज़मर्रे के मीडिया प्रोडक्शन और गहन प्रतियोगिता व नकल की व्यावहारिक समस्याओं को देखते हुए यह सुझाया गया है कि इस प्रकार के व्यावहारिक दिशा-निर्देश मात्र पवित्र गाय के समान पावन मंत्र ही सिद्ध होंगे. न तो कोई उन्हें पढ़ेगा और न ही उनका पालन करेगा. इसलिए स्व-नियमन के तथाकथित झाँसे में न आते हुए

प्रसारण मीडिया के लिए एक विनियामक ढाँचा अविलंब तैयार किया जाना चाहिए और सार्वजनिक जाँच की पक्की व्यवस्था के साथ इसे स्वायत्त और विकेंद्रित बनाया जाना चाहिए

सहाना उड़ुपा भारत के बैंगलोर शहर में स्थित राष्ट्रीय उच्च अध्ययन संस्थान में डॉक्टरेट की छात्रा हैं. अपनी कृति में उन्होंने बैंगलोर के वैश्विक शहर और 1990 से उदित समाचार संस्कृति के बीच के इंटरफ़ेस के अन्वेषण करने का प्रयास किया है, जिसमें उनका व्यापक उद्देश्य समकालीन पत्रकारिता की प्रथाओं और सार्वजनिक निर्मितियों के अंत:संबंधों के सैद्धांतिक स्वरूप की विवेचना रहा है. स्प्रिंग,2010 में वे पैन्सिल्वानिया विश्वविद्यालय के वैश्विक संचार केंद्र में विज़िटिंग स्कॉलर रही हैं

हिंदी अनुवादः विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा),रेल मंत्रालय, भारत सरकार

<malhotravk@hotmail.com>